नागार्जुन के काव्य-साहित्य में सामाजिक-यथार्थ पक्ष

Dr. JASHBIR SINGH S/O KARTAR CHAND
H. No. 142, TEJ COLONY TEHSIL CAMP, PANIPAT-132103, HARYANA (INDIA) MOBILE

नागार्जुन का पूरा नाम वैद्यनाथ मिश्र है. हिंदी साहित्य में उन्होंने अपने उपनाम नागार्जुन तथा मैथिलि नाम का प्रयोगकर साहित्य सृजन किया. उनका जन्म गाँव सतलखा, मधुबनी, बिहार, भारत देश में 30 जून 1911 को हुआ. आरम्भिक शिक्षा अर्वाचीन पद्धति संस्कृत सहित उन्होंने स्व-अध्ययन अत्यधिक किया. महान लेखक राहुल संस्कृत्यायन द्वारा अनुवादित चर्चित पुस्तक 'संयुक्त निकाय' पढ़कर वैद्यनाथ ने पालि सीखी जिसके लिए वे श्रीलंका देश चले गए. वहां उन्होंने मठ-भिक्षुओं को संस्कृत पढ़ाई तथा वहां बौद्ध धम्म अपनायाऔर अंत में वैष्णव-धर्म में अंतिम आस्था दर्शायी.

नागार्जुन का साहित्य-दान इतना है जितना समुंद में जल नहीं, आकाश में नभ नहीं, अग्नि में तपन नहीं. यह अतिशयोक्ति उनके साहित्य के विषयवस्तु-मौलिकता-प्रासंगिकता रूप में विद्यमान होने के परिणामस्वरूप है. नागार्जुन जी पूर्णतया: साम्यवादी विचारधारा सिद्धांत की ओर उन्मुख होकर उन्होंने अपने पद्य-गद्य रूप में जनवादी-विचारधारा से जुड़े. उन्होंने अपने साहित्य-जगत् में मानव जनजीवन के चित्र यथार्थ की सुदृढ़ रूप में स्थापित किए. मानव हितों की रक्षा हेतु उन्होंने साहित्य में आक्रोश, क्षोभ, कटीले व्यंग्य, संघर्ष-गीत, प्रतिरोध, आदि रूप का निर्माण किया.

नागार्जुन प्रकृति-चित्रण को राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानवीय रूप में 'यथार्थ' लोकदृष्टि माध्यम से दर्शाया है. नागार्जुन जी देश में रोटी-कपड़ा-मकान-दवा जैसे अभावों तथा जाति-वर्ग-धर्म-राजनीति विषमताओं को द्रष्टव्य किया. सामाजिक यथार्थ रूप में लोकदृष्टि समन्वित विरोध किया है. समाज में लोक निरंतर-मुश्किलों भरा जीवन जी रहे है फिर भी अपनी चुनौतियों-के-समाधान हेतु संघर्षशील है जिसका शोषण शिकार कर रहा है, वह स्वयं पूंजीवाद-विचारधारा से ग्रस्त है. साम्राज्यवादी-बुलडोजर चल रहा है. समाज में नेताओं को व्याभाचिरी और भ्रष्ट रूप में वासना तृप्ति-हेतु वेश्याओं के पांवों में लिप्त पाया गया. समाज में धर्म और संस्कृति को आज़ादी के पश्चात नेताओं-अधिकारीयों ने बदलकर रख दिया है.

नागार्जुन जी अपने देश में राजनीतिक-सामाजिक समस्याओं साहित्य राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय दोनों पक्षों को सामने रखते है एवं यथार्थ रूप में साम्यवादी लोकदृष्टि रखते है. यथा

"नहीं लौटूँ, चीर चलूँ, कैसा भी तिमिर हो.
प्रलोभन में पड़कर बदलूँ नहीं रूख
रहू साथ-सबके, भौगूँ साथ सुख-दुःख
गुरुदेव मेरे ."[1]

नागार्जुन जी लोकदृष्टि यथार्थवादी विचारधारा पोषक, सर्वहारा वर्ग हितैषी, देश नेताओं का पूंजीवाद के आगे नतमस्तक होना तथा देश का कालगत सर्व-परिस्थितियों को दर्शाया है. देश में गरीबी की चर्चा-मंथन प्रस्तुति, यथा

" फटे वस्त्र है, घर में बाहर निकलेगी कैसे लजवन्ती
शर्म न आती, मना रहे वे महँगाई की रजत जयंती
सप्त की पोटरियां बाँधे
शिशुओं को बैठाएँ काँधें
अचरज के मारे मुँह बाए
बहुजन इन्हें देखने आए"[2]

नागार्जुन जी, देश में गरीबी के दर्शनों सहित देश में रजत (25 वर्षीय ख़ुशी) और उस जयंती पर काँधे-पर-बच्चें बैठाकर तथा अचानक-दम-दम हांकते लोगों को देखने बहुजन पधारते है. . .नागार्जुन जी ने अपने साहित्य में प्रेम-भाव के माध्यम में सामाजिक यथार्थवादी लोकदृष्टि को अपनाया है तथा इनके प्रेम आवेग-विवेक का मिश्रित रूप है. उनपर बुद्ध दुःख का प्रभाव भी पड़ा. प्रेम की कुछ पंक्ति प्रस्तुत है. यथा

" कर गई चाक
तिमिर का सीना
जोत की फाँक
यह तुम थी."[3]

---

[1] युगधारा, नागार्जुन, पृष्ट 801, वाणी प्रकशन, दिल्ली 1953
[2] चुनी हुई रचनाएँ, नागार्जुन, पृष्ठ 197-98, वाणी प्रकाशन, 1985

" आओ प्रिय, आओ
बहुत दिन हो गए
आज फिर साथ-साथ बैठें घड़ी-आध-घड़ी
मैं नहीं भूल सका फिर तुम्हीं भला भूलोगे कैसे ?
लेकिन, अब तो भई रहा नहीं जाएगा मुझसे
बहुत दिन हो गए
आओ, साथ-साथ बैठें
भाई का प्यार
बहन की ममता
मीत के नेड-छोड़
आओ आज सब कुछ तुम्हीं पर उड़ेलता दूँ ?"[4]

नागार्जुन जी, समाज में नारी का यथार्थ-चित्रण में माध्यम से नारी के मार्मिक-चित्रण पर जोर देते है. समाज में नारी को चारदीवारी में बंद रखने का विरोध करते हैं. उपभोग की वस्तु 'नारी' को समझने वालों को लताड़ते है. समाज में नारी और मछली का लोक-जीवन एक सामान दर्शाते है. अपनी कविता 'तालाब की मछलियाँ' के माध्यम से यथा:

" हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग की वस्तु हैं
ज्ञाता स्वाद सुधीपन, सजनी हम दोनों के अनुपम बतलाते है
हमें इन्होने कैद कर लिया तालाबों में इसीलिए तो
तुम्हें इन्होने कैद कर लिया
सात-सात देव देवढ़ियोंवाली हवेलियों में
सुविधा और सामर्थ्य मुताबिक
अपनी-अपनी रूचि के ही अनुसार के सभी
रसना-रति के लेलिहन उस अग्नि कुण्ड में

[3] सतरंगे पंखोंवाली, नागार्जुन, पृष्ठ 801, वाणी प्रकाश, दिल्ली, 1984
[4] सतरंगे पंखोंवाली, नागार्जुन, पृष्ठ 16-17, वाणी प्रकाश, दिल्ली, 1984

भून-भूनकर हमें खा गये
और अभी तक खाये जाते."[5]

नागार्जुन जी, ने महिलाओं के यथार्थवादी लोकजीवन को तालाब की मछलियों की भाँती गुलामी भरा, बेबस, निर्बल, कमज़ोर आदि रूप में दिखाया है. जिहें समाज द्वारा भोगा जाता है, सताया जाता है और शोषण किया जाता है.

नागार्जुन जी का मानना था कि आज़ादी मिलने पर लोगों को अपना दयनीय हालत, गरीबी, आदि से मुक्ति मिलेगी परन्तु भारतीय नेताओं ने इस आज़ादी के मायनों को ही बदलकर रख डाला और देश की दशा और भी बद्दतर बना डाली. देश में गरीबी इतनी हो चली कि चारों से अंधकार-ही-अंधकार व्याप्त हो गया. एक पद्यांश प्रस्तुत है यथा:

" गेहूँ दो, चावल दो
इतना दिया, और दो, पुष्कल दो !
गंगा बेकार है, हडसन का जल्द दो !
चारा दो, फल दो !
हिलेगी कैसे, दम में बदल दो !
गेहूँ दो, चावल दो !"[6]

देश में पूंजीवाद अपनी साम्राज्यवादी विचारधारा के परिणामस्वरूप प्रवेश कर पायी. जिसका यथार्थवादी चित्रण नागार्जुन जी ने अपनी कविता-संग्रह युगधारा में किये यथा:

" ताक लगाये
कछुओं-सा कर-चरण समेटे
देश धन्नासेठ
विदेशी युधिष्ठिरों की शरण मांगते
पूंजी को चाहिए छांह साम्राज्यवाद की"[7]

---

[5] तालाब की मछलियां', चुनी हुई रचनाएँ, नागार्जुन, पृष्ठ 53-54, वाणी प्रकाशन 1985
[6] चुनी हुए रचनाएं-2, भूमिका, नागार्जुन, पृष्ठ 46-47 नयी दिल्ली, 1985
[7] युगधारा, नागार्जुन, पृष्ठ 981, यात्री प्रकाशन, सादतपुर, दिल्ली, 1953

नागार्जुन ने प्रकृति चित्रण में भी यथार्थवादी रूप मिश्रित किया है. उन्होंने उसमें मानवीय जनजीवन को प्रभावित होते हुए भी दिखाया है. प्रकृति को मानव से जोड़ना और जनजीवन को उसमें समाहित करने की प्रतिभा नागार्जुन में खूब देखने को मिली. नागार्जुन जो इनमें त्योहारों के समय भी प्रकृति-चित्रण के रूप में यथार्थवादी रूप दर्शाने की कोशिश की है.

“ स्वजन-परिजन
चहेते पशु-पक्षी
निकटवर्ती बगिया के
फूलों पर मंडराते
सु-परिचित भ्रमर
किसी का अंतर्नाद
दुखा जाता है मेरे दिल . . .
वर्षाती, मौसम के निशीथ में
सुने मैंने हाल ही
उस गरीब की चीत्कार
साँप के जबड़ों में फसना था वो
कर रहा था
चीत्कार निरंतर”[8]

आगे नागार्जुन जी लिखते है कि देश के नेताओं ने देश को आज़ादी को कुछ यूँ भुला दिया. यथा:

“ कृत-कृत नहीं जो हो पाए,
प्रत्युत फांसी पर गये झूल
कुछ ही दिन बीते हैं फिर भी
यह दुनिया जिनको गयी भूल
- उनको प्रणाम !”[9]

[8] आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, नागार्जुन, पृष्ट 12,वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1986
[9] चुनी हुई रचनाएँ (जनकवि), नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, पृष्ट 60, दिल्ली 1985

नागार्जुन ने यह चित्रण समसामयिक राजनेताओं पर खूब किये जो स्वार्थी, बगुलाभगत, स्वार्थ स्वांत: सुखाय भाव वालें लोगों पर किया. जिनकी नज़र में देश कहीं भी जाए उन्हें उनसे कुछ लेना-देना नहीं है. जयप्रकाश के आन्दोलन में उन्होंने अपनी सोच में बहुत बड़ा बदलाव लाया. यथा:-

“ एक और गांधी की हत्या होगी अब क्या ?
बर्बरता के भोग चढ़ेगा योग अब क्या ?
पोल खुल गयी शासक दल के महामंत्र की.
जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की.
भटक गया है देश दलों के बीहड़ वन में
कदम-कदम पर संशय ही उगता है मन में
नेता क्या है, निज-निज गुट के महामंत्र हैं.
राष्ट्र कहाँ है शेष, शेष बीएस ‘राज्य’ मात्र हैं.”[10]

सरकार की विदेश नीति सम्बन्धी सामाजिक यथार्थ रूप में उन्होंने देश में मार्क्सवादी विचारधारा को कुछ ही अंश (कुछ राज्यों में केवल) पाया. उन्होंने 1962 ई० माओं पर अपने यथार्थवादी विचार प्रस्तुत किये है और लोकजीवन दर्शाया है.

“ वह माओ कहाँ है ? वह माओ मर गया
यह माओ कौन हैं, बेगाना है यह माओ
आओ इसकों नफ़रत की शूलों से नहलाओं
आओ इसके ख़ूनी दाँत उखाड़ दें
आओ इसको जिन्दा ही कब्र में गाड़ दो .”[11]

ऐसा लिखने से नागार्जुन को अपनी सदस्यता भी खोनी पड़ी और उनकों पद से बर्खास्त भी किया गया. जिसके प्रमाण रूप में स्वयं नागार्जुन जी लिखते है कि, “मैं स्थानीय घटनाओं से निर्लिप्त होकर मार्क्सवादी नहीं रहना चाहता . . . मेरे संदर्भ में

[10] खिचड़ी विप्लव देखा हमनें, नागार्जुन, संभावना प्रकाशन, रेवतीकुञ्ज, पृष्ठ 14, हापुड़, प्रकाशन 1980,

[11] दस्तावेज 33 अंक, पृष्ठ 34, गोरखपुर, प्रकाशन वर्ष 1987

राष्ट्रीय मार्क्सवाद शब्द कहना ही अधिक सही होगा. भारत में ही क्यों सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में मार्क्सवादी तभी फलदायी होगा, जब वह राष्ट्रीयता से जुड़ेगा."_इसी संदर्भ से जुड़ा एक मंतव्य डॉ. विजय बहादुर सिंह देते हुए कहते है कि, "वामपंथ नागार्जुन के लिए अपनी जनता के संघर्षों से जूझने का महत्वपूर्ण साधन है. रूस या चीन या लेनिन-माओ की पूजा का पोथा नहीं. इसलिए वे निरंतर अपना ध्यान जानते के खिलाफ़ होने वाले हमले पर लगाये रहते हैं."[12]

नागार्जुन जी, सामाजिकता में समाज-कुशासन का वर्णन भी करते है. भारतीय अधिकारी केवल-और-केवल आश्वासन हेतु दिखाई देते है. देश की आज़ादी तभी होगी जब देश आर्थिक रूप से समृद्ध होगा तथा देश भष्टाचार अदृश्य हो जाएगा. जिससे जनतंत्र स्थापित होगा जिसका आधार मार्क्सवाद हो. 1971 में कम्युनिस्टों के प्रचार एवं बंगाल में इंदिरा गांधी का चुनावी-विरोध निरजला जी ने खूब किया. इंदिरा गांधी को देवी पुकारकर चुनाव का प्रहसन बंद कराने पर कविता भी लिखी. क्योंकि पूंजीवाद की बंद लोग सच मायने में जनवादी प्रतिनिधि ही थे. कुछ दृष्टान्त यथा:

"शून्य सांत्वना देने वाली शांति तुम्हारी तुम्हें मुबारक
ढकोसला, यह अध्यात्मिक शांति तुम्हारी तुम्हें मुबारक
दश दिक्पालों के ही बूते क्या सारा संसार चलेगा"[13] (कुशासन यथार्थ)

" सेठों और जमींदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम
खेत-खाना-दूकान-मिलें सरकार करेगी दखल तमाम
खेत-मजदूरों और किसानों में जमीन बँट जायेगी
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मंडरायेगी"[14] (आर्थिक यथार्थ)

"समझ गया हूँ
जीवन में इस धरा-धाम का क्या महत्व है
समझ गया हूँ
कैसे जनकवि जमींदार के उन अम्लों को मार भगाता
हरे बाँस की हरी-हरी वह लाठी लेकर"[15] (भष्टाचार सम्बन्धी यथार्थ)

---

[13] चुनी हुई रचनाएँ-2, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, पृष्ट 60, दिल्ली 1985
[14] हज़ार-हज़ार बाहों वाली, नागार्जुन, पृष्ट 49

"मत-पत्रों से भरी पेटियाँ" नभ में नाच रही हैं
बंदूकें उनके सहेलियाँ, जो हाँ साथ वही हैं
उड़ते-हिलते फुर्तिलें कर ठप्पे मार रहे हैं
मौसम चुप है, पीले पत्ते सोच-विचार रहे हैं
ताजे-टटके मतपत्रों पर जमें लहू के दाग
बेलट की जादुई पेटियां लील रही है आग
कंकालों से महाजनों की करनी है रखवाली
और अधिक लम्बी हो आयी जीभ, चकित है काली"[16] (जनतंत्र की मांग)

सामाजिक यथार्थ रूप में नागार्जुन जी ने 1978 की जनता पार्टी के उदय से शासन में कुछ आस जगी, जिससे जनता अपने दुखों को धो सकेगी. उसके पश्चात 06 मार्च 1975 को देशभर में इमरजेंसी का समाजिक यथार्थवादी-चित्रण दर्शाया गया है. जेलों को सभी क्रन्तिकारी नेताओं से भर दिया गया था और नागार्जुन जी ने अहिंसा का नहीं हिंसा के विरूद्ध कारवां चलाया. यथा:-

"शासन का जादुई यंत्र है
धन कुबेर का महामंत्र है
लोक नीति है पुलिस तंत्र है."[17] (1978 की जनता पार्टी सम्बन्धी यथार्थ)

"दस लाख की भीड़, उस दिन
तुम्हें अपना 'मुख' बनाकर कुछ कर रही थी
उस दिन पार्लियामेंट के बाहरी कक्ष में
स्पीकर ने तुम्हारी आगवानी की थी
स्वास्थ्य के बारे में पूछा था
शर्बत पिलाया था
तुम उनके समक्ष

[15] चुनी हुई रचनाएँ (जनकवि), नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, पृष्ट 60, दिल्ली 1985
[16] तुमने कहा था, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1980, दिल्ली पृष्ठ 114-115
[17] उपरोक्त

मुस्कराएं थे निहायत भद्रतापूर्वक
वहाँ से वापस आकर लगभग दो घन्टा बोले थे
“लोकनायक” उस रोज तो तुम कौन थे ?
“सम्पूर्ण क्रांति” वाले तुम्हारे सौंधे ख्याल
व्यापक जनक्रांति की तुम्हारी अनिच्छा
सर्वहारा के प्रति परायेपन के तुम्हारे भाव
अभिनय महाप्रभुओं के प्रति शक्ति संतुलन का
तुम्हारा हवाई मूल्यबोध . . .
तुम्हारी मसीहाई महत्वकांक्षाएं . . .
काहिल, आरामपसंद, संयमशील, डरपोक, कपटी, क्रूर
वो सब क्या था आखिर ?”[18] (1975 में एमरजेंसी हालात)

“ले नहीं प्रतिशोध
क्षमा ही क्षमा करता जाये . . .
ऐसी भी बुद्धि क्या !
ऐसा भी मन क्या !”[19] (प्रतिशोध – यथार्थ)

नागार्जुन जी ने सामाजिक यथार्थ एवं लोकजीवन रूप में समाज में छुआछूत को दर्शाया. समाज में आर्यों के भेद ने देश में जातियों के भेद कर डाले और उनके छुआछूत का घोल मिला दिया. गांधीवाद का समाज के हर क्षेत्र पर प्रभाव था और नागार्जुन जी ने ‘एक फूल की चाह’ कविता माध्यम से समाज के निम्न वर्ग की संवेदना को उजागर किया है. वहीँ समाज में हिन्दू संप्रदाय और मुस्लिम संप्रदाय में भेद का सामाजिक यथार्थवादी चित्रण किया है. जिसमें इस्लाम का एकेश्वरवाद और हिंदुत्व का भगवाधारी के खिलाफ़ उनका विरोध उनकी कविताओं में देखने को मिलता है.

[18] खिचड़ी विप्लव देखा हमनें, नागार्जुन, संभावना प्रकाशन, रेवतीकुञ्ज, पृष्ठ 23-24, हापुड़ प्रकाशन संस्करण 1980,
[19] ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या- नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 32, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985,

साथ ही हिन्दू बनाम धर्म के ठेकेदारों का भी पर्दा उठाकर केवल-एक-धर्म वैष्णव को सही माना है और अपनी अस्तित्व को नास्तिक से बेहतर संज्ञा दी है. यथा:-

"शुरू हो गया नेताओं का
मधुर बुझावन मधुर सिखावन
शांत रहे हम
हत्यारे को सजा मिलेगी
जो भी करना है सब सरकार करेगी
तत्पर हो सारी साजिश की जांच और पड़ताल करेगी."[20] (हिन्दू-मुस्लिम भेद)

" शैतान आयेगा रह-रह हमको भरमाने
अब खाल ओढ़कर तेरी सत्य अहिंसा की"[21] (अहिसां के दिखावटी)

" भगवान, अमिताभ, सहचर मैं चाहती
चाहती अवलंब, चाहती सहारा
देकर तिलांजली, मिथ्या, संकोच को
हृदय की बात लो, कहती हूँ आज मैं-
कोई एक होता
कि जिसको
अपना मैं समझती
भले ही पिटता भले ही मारता
किन्तु. किसी क्षण में प्यार भी करता
जीवन-रस अड़ेलता मेरे रिक्त पात्र में
भूख मातृत्व की मिटा देता है."[22] (भिक्षुणी कविता में मातृत्व यथार्थ)

" असुर वैदिक फिर बौद्ध-जैन

[20] शांत रहे हम, (युगधारा) नागार्जुन, पृष्ठ 48, यात्री प्रकाशन, सादतपुर, दिल्ली, 1953
[21] युगधारा, नागार्जुन, पृष्ठ 45, यात्री प्रकाशन, सादतपुर, दिल्ली, 1953
[22] युगधारा,नागार्जुन, पृष्ठ 18-19, यात्री प्रकाशन, सादतपुर, दिल्ली, संस्करण 1953

इस्लाम सिक्ख सबको देखा
तेरे इस बहते पानी पर
क्या खींच सका कोई रेखा"[23] **(** वैष्णव धर्म महानता)

"ओं नमों भगवते-भुवन-भास्कराम
"ओं नमों ज्योतिरी श्वराय
"ओं नम: सूर्याय सवित्रे . . ."
देखना भाई रत्नेश्वर, जल्दी न करना
लौटेंगे इत्मीनान से
पछाड़ दिया है आज मेरे आस्तिक ने मेरे नास्तिक को."[24] (आस्तिक-नास्तिक यथार्थ)

नागार्जुन जी, भारत देश और उसकी जनता से प्रेम करते है, जिसके लिए वे दो (हृदय एवं व्यंग्य) रूपों दलित-किसान-मजदूर सहित मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग की हताशा का सामाजिक यथार्थवादी चित्रण करते है. डॉ. सत्यनारायण लिखते है, *"नागार्जुन की कविताओं में समाज संघर्ष मुख्य रूप से मुखरित हुआ है जब व्यक्तिवादी अकवि अपने घेरे में बंधे खुद के सुख-दुःख का राग अलाप रहे थे, उसमें पूर्व ही नागार्जुन ने सामाजिक संघर्ष की ओर अपनी कवित्व को तो मोड़ा ही, खुद भी उसमें कूद पड़े. वे अपने समय के यथार्थ से गहरे से जुड़े हुए हैं. यथार्थ के सभी पहुलओं पर इनकी पैनी दृष्टि रही अहि और उनके विचार और कार्य में कहीं कोई द्वैद्ता नहीं है. इसलिए इनकी अभिव्यक्ति सच्ची और ईमानदार अभिव्यक्ति है, क्योंकि उनकी कविताएँ जन से परे नहीं बल्कि उनके संघर्ष में बराबर की भागीदारी निभाती है."*[25] उनका प्रेम वात्सल्यमयी रूप में भी है और अकेला-उदासी मनोवैज्ञानिक भी. एक स्थान पर अध्यापक-वर्ग-प्रतिनिधित्व 'प्रेत का ब्यान' कविता से प्रस्तुत करते है, यथा;

" ओ रे प्रेत- कड़क कर नरक के मालिक यमराज

[23] चुनी हुई रचनाएँ-2, नागार्जुन, पृष्ठ 37, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985
[24] पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने (चुनी हुई रचनाएँ) , नागार्जुन, पृष्ठ 157, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985
[25] नागार्जुन, कवि और कथाकार, डॉ. सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं 1991

‘ सच सच बतला’, कैसे मरा तू, भूख से, अकाल से ?
बुखार, कालाबाज़ार इ ? पेचिश बदहज़मी; लिग महामारी से ?
‘ सुनिये महाराज, तनिक भी पीर नहीं, दुःख नहीं. दुविधा नहीं,
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण, सह न सकी आंत जब पेचिस का हमला.”[26]

नागार्जुन जी, निम्नवर्ग-पीड़ितवर्ग एवं वंचितवर्ग के प्रति संवेदना-सहानुभूति रखते है. उनका सदैव साम्यवादी विचारधारा के रूप में अन्याय-शोषण-गरीबी-भूख-बदहाली के प्रति विरोध रहा जिसे उन्होंने साहित्य-की-पृष्ठभूमि में जोड़ा. ग्रामीण और शहरी जीवन की अंतर-रेखा को उन्होंने बड़ी बखूबी समझा-समझाया. वर्गों में उच्च-मध्यम-निम्न तीनों में वैषम्य सामाजिक यथार्थ रूप में द्रष्टव्य किया. यह वैषम्य आज़ादी पश्चात तीव्रगामी बदला और आधुनिकता का चोला अधिकतम विशाल हुआ. महिलाओं की दशा का यथार्थवादी रूप हमें ‘मछलियों’ के मध्यम से प्रकट की तथा देश में गरीबी का वर्णन नागार्जुन जी इस प्रकार करते है; यथा –

“ कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त”[27] (गरीबी-भुखमरी यथार्थ)

नागार्जुन जी, व्यक्ति केन्द्रित (समाज से कटा हुआ) साहित्य दर्शाने के पक्षधर नज़र आते है. जिसे आम व्यक्ति सहज नहीं देख सकता. सामाजिक वैषम्य उन्हें सुरसा युद्ध जैसा प्रतीत होता है. वह मजदूरवर्ग-राज्य-स्थापना देखना चाहते है. हर वर्ग के पक्ष में आना उनका सामाजिक यथार्थवादी स्वाभाव है. गाँवों में ग्रामीण-क्षेत्रों-अध्यापकों की दशा का सामाजिक यथार्थवादी-चित्रण उनके साहित्य में देखने को मिलता है. भष्टाचार की जड़ से समाज में फलते-फूलते कालाबाजारी, अराजकता, हिंसा और महंगाई बड़ी है. यही नहीं इस समस्याओं की जड़ से महिलाओं का

[26] प्रेत का बयान (युगधारा); नागार्जुन, पृष्ठ 87-88, यात्री प्रकाशन, सादतपुर दिल्ली, प्रथम संस्करण 1953

[27] सतरंगे पंखोंवाली, नागार्जुन, पृष्ठ 21, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985

अपहरण-एवं-विक्रय आदि वर्णन मिलता है. सांप्रदायिक हिंसा रूप में दंगे रूप में मेरठ (उत्तर-प्रदेश) की भयानक-दृश्यों को सामाजिक यथार्थ रूप में अंकित किया है. 26 जनवरी भारतीय गणतन्त्र-दिवस की जो नयी उम्मीद देश के सामने आई वे अनेकों विसंगतियों को साथ लेकर आई और नागार्जुन के समय-से-आगे भी निकल गयी.नागार्जुन जी ने गाँधीवाद को स्वीकार जरूर; कुछ अलग रूप में- 'अहिंसा नहीं, प्रतिहिंसा को चुना'. उनके कुछ अंश प्रस्तुत है; यथा

" और क्या लिखूँ इन देहाती स्कूलों पर भी दया कीजिए
दीन-हीन छात्रों-गुरुओं की कुछ भी तो सुध आप लीजिए
हटे मिटे यह निपट जहालत, प्रभु ग्रामीणों पर पसिजिए
कई फंड हैं, उनमें से सब हमको वाजिब एड दीजिए."[28] (देहाती अध्यापक आर्थिक-सामाजिक दशा)

" रामराज्य में अब की रावन नंगा होकर नाचा है
सुरत-शक्ल वही है भैया बदला केवल ढांचा है
नेताओं की नीयत बदली फिर तो अपनी ही हाथों
भारत माता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है."[29]

" जमींदार हैं, साहुकार हैं, बनिया हैं, व्योपारी है
अंदर-अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दर धारी है
माताओं पर, बहनों पर, घोड़े दौडाएं जाते है
बच्चे, बूढ़े-बाप तक न घूरते, सताए जाते हैं
मार-पीट है, लूटपाट है, तहस नहस बर्बादी
जोर जुल्म है, जेल-सेल है . . .
वाह, खूब आज़ादी है ."[30]

अत: नागार्जुन के काव्य-साहित्य अध्ययन और विषय-क्षेत्र एवं उसकी प्रासंगिकता के मध्यनजर हमें सामाजिक यथार्थ-ही-यथार्थ के दर्शन होते है. जिसमें

[28] हज़ार-हज़ार बाहों वाली, नागार्जुन, पृष्ठ 175
[29] इस गुब्बारे की छाया, नागार्जुन, पृष्ठ 63, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1998
[30] हज़ार-हज़ार बाहों वाली, नागार्जुन, पृष्ठ 35,

सर्वहारा वर्ग (दलित-किसान-मजदूर-नारी) प्रमुख है. देश में गरीबी-भूख, नग्नता, बदहाली और भविष्य अंधकार में दिखाया है. समाज में पूँजीवादी के कारण साम्राज्यवादी शक्तियों रुपी बुलडोजर के आगे सब नतमस्तक होकर बेबस खड़े है. देश के राजनेताओं में देश आज़ादी पश्चात गणतंत्र-नक्शा ही बदल डाला तथा देश को सांप्रदायिक दंगों का उपहार प्रस्तुत किया. जिससे देश धर्मों ही नहीं जातियों में भी अति-तीव्रगति से बंटने लगे और देश के राज्य में जिले टूटने लगे. 'अब राष्ट्र नहीं, राज्य पहले'सिद्धांत रुपी बारूद कोई सांप्रदायिक हवा मिलने लगी. नेताओं की पास केवल-और-केवल आश्वासन रह गये तथा जनता उनकी उम्मीद में भूखी-नंगी-प्यासी-दीन-हीन-अशिक्षित-मजबूर जीवन निरंतर जीने लगी. देश में जिस माओ का आगाज़ हुआ वह तो मर और नया माओ जन्मा जिसमें देश को कहीं का न छोड़ा.

देश जहाँ आर्थिक आज़ादी मुक्ति हेतु ललक रहा था वहाँ देश कुशासन-रूप में सेठों, जमींदारों के चंगुल में फंस चला था. देश का लोकतंत्र का आधार मतदान बक्से अब बंदूकों के इशारे में डलने लगे और जमीन पर निर्दोषों का लहूँ बहने लगा. 1978 में जनता पार्टी से कुछ जादुई-चमत्कार अधिक समय नहीं चल सकता और सन 75 में आपातकाल ने देश-को-देश न छोड़ा. जनवादी प्रतिनिधि ही जेलों पर ठूंसे गये और लाठियों से सिर फोड़-फोड़कर धरती लहू-लुहान से लाल कर दी. ऐसे करूर-शासन का दृश्यांकन नागार्जुन जी ने किया. समाज में जातिवाद अंतर्गत छुआछूत का विरोध किया. हिन्दू-मुस्लिम में द्वेष आरम्भ हो गया था. नागार्जुन जी ने वैष्णव-धर्म महानता दिखा बौद्ध-जैन-इस्लाम-सिक्ख सभी को नकारा. यही नहीं उन्होंने अपने 'आस्तिक की नास्तिक पर विजय' दिखा उसे पीछे रहते दिखाया है. नागार्जुन जी चाहते है की उनकी कविताएँ व्यक्ति-केन्द्रित हो और उसके प्रभाव से मजदूर-राज्य स्थापित हो जिसमें मालिक मजदूर हो किसी जमींदार-सहकर उनका शोषण न कर सके. नागार्जुन जी सामाजिक यथार्थ रूप में रावन की मनमर्जी दिखाना चाहते है और दिखाया है जिससे भारत माता का अपमान हुआ है. नागार्जुन जी ने अपने साहित्यिक योगदान के मध्यम से सामाजिक यथार्थ और लोक जीवन सहित महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है. जिनमें उनकी कला-प्रतिभा-ज्ञान दर्शन सहित समाज की यथार्थवादी विचारधार, क्षेत्र, विशेषता एवं उसकी प्रासंगिकता के दर्शन होते है.

*****

संदर्भ:

1. युगधारा, नागार्जुन, वाणी प्रकशन, दिल्ली 1953
2. चुनी हुई रचनाएँ, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, 1985
3. सतरंगे पंखोंवाली, नागार्जुन, वाणी प्रकाश, दिल्ली, 1984
4. तालाब की मछलियां', चुनी हुई रचनाएँ, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन 1985
5. चुनी हुए रचनाएं-2, भूमिका, नागार्जुन, नयी दिल्ली, 1985
6. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, नागार्जुन,वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1986
7. चुनी हुई रचनाएँ (जनकवि), नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1985
8. खिचड़ी विप्लव देखा हमनें, नागार्जुन, संभावना प्रकाशन, रेवतीकुञ्ज, हापुड़, प्रकाशन 1980,
   दस्तावेज 33 अंक, गोरखपुर, प्रकाशन वर्ष 1987
9. हज़ार-हज़ार बाहों वाली, नागार्जुन,
10. तुमने कहा था, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1980, दिल्ली
11. ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या- नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985,
12. शांत रहे हम, (युगधारा) नागार्जुन, यात्री प्रकाशन, सादतपुर, दिल्ली, 1953
13. इस गुब्बारे की छाया, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1998